* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

# भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास—दामोदर ३, वार—क्षीरोदशायी, शनिवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०२७, १७ अक्टूबर १९७० | संख्या ५

अक्टूबर १९७०

# श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

## श्रीनलकूबरमणिग्रीवयोः श्रीकृष्णस्तोत्रम्

### ( श्रीमद्भागवत १०।१०।२९—३८ )

**कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।**
**व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥**

हे कृष्ण ! हे महायोगेश्वर कृष्ण ! आपका प्रभाव अचिन्त्य है। आप परम पुरुष हैं और जगत्के मूलनिमित्त तथा उपादान कारण हैं। ब्रह्मविद् लोग इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक या दृश्यादृश्य जगतको आपका ही (प्राकृत) रूप बतलाते हैं ॥२९॥

**त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।**
**त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥**
**त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।**
**त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥**

हे भगवन् ! आप ही समस्त प्राणियोंके देह, प्राण, अहंकार और इन्द्रियोंके एकमात्र

अधिपति या ईश्वर हैं । आप ही विष्णु हैं; अव्यय स्वरूप और ईश्वर स्वरूप हैं। आप ही काल ( निमित्त कारण ) और त्रिगुणात्मिका सूक्ष्म प्रकृति ( उत्पादन कारण ) हैं। आप ही महत्तत्त्व ( कार्यस्वरूप ) हैं, आप ही अंतर्यामी हैं । अतएव समस्त प्राणियोंके चित्तको जाननेवाले हैं और पुरुषस्वरूप हैं ( तात्पर्य यही है कि वस्तु—भगवान् हैं, वस्तु शक्ति—प्रकृति है, वस्तु अंश—पुरुष है, वस्तु कार्य—महान् है । सभी ही शुद्धाद्वैत-विचारसे वास्तव वस्तु हैं । अतएव वस्तु तत्व विचारसे ये सभी अभिन्न हैं। गौड़ीय वैष्णवोंके विचारसे स्वरूप, तद्रूप वैभव, जीव और प्रधान परतत्वसे स्वतन्त्र नहीं हैं ) ॥३०-३१॥

**गृह्यमाणैस्त्वग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।**
**कोऽन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥**

( यदि मैं ही सबकुछ हूँ, तो घटादि प्राकृत वस्तुज्ञान द्वारा मेरे सम्बन्धमें क्या ज्ञान प्राप्त होता है ? यदि ऐसा ही है, तो सभी ही ब्रह्मविद् हैं—इस तत्वको परिस्फुट करनेके लिए इस श्लोककी अवतारणा है ) । द्रष्टा स्वरूप आप द्रश्य रूपसे वर्त्तमान प्रकृतिजात बुद्धि, अहंकार, इन्द्रिय आदियोंके ग्राह्य नहीं हैं । ( तब क्या जीवात्मा आपको जाननेमें असमर्थ हैं ? इसके उत्तरमें कहा जा रहा है । ) गुणमय देहमें आवद्ध कौनसा जीव उसके कारण रूपसे उसकी उत्पत्तिके पहलेसे स्वत:प्रकाश स्वरूपसे वर्त्तमान आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है ? ॥३२॥

**तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।**
**आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥**

हे भगवन् ! स्वत:प्रकाश गुणोंके द्वारा आपकी महिमा प्रच्छन्न रूपसे वर्त्तमान है, आप प्राकृत सृष्टिके कर्त्ता संकर्षण स्वरूप स्वयं भगवान हैं । आप ही वासुदेव ( चतुर्व्यूहके आदि ) हैं एवं सर्वात्मक होनेके कारण ब्रह्मस्वरूप हैं । ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३३॥

**यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।**
**तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥३४॥**

आप प्राकृत शरीररहित हैं । जो सभी पराक्रम प्राकृत शरीरधारियोंके लिए असंभव हैं, आप मत्स्य, कूर्म, वराह आदि विग्रह धारण कर प्राणियोंके बीच वे सभी अनुपम गुणयुक्त वीर्य प्रकट कर आपके अवतार ग्रहणकी बात प्रकाश करते हैं । आपकी लीलाओंसे श्रेष्ठ कार्य दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा करना तो दूर रहा, उन लीलाओंकी भी वह समानता नहीं कर सकता ॥३४॥

**स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।**
**अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥३५॥**

हे प्रभो ! आप ही वे सर्वकल्याणप्रदाता महापुरुष हैं जो समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं। इस समय आप समस्त लोकोंके अभ्युदय और मोक्ष-प्रदानके लिए पूर्ण रूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥३५॥

**नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।**
**वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥**

हे परम कल्याण स्वरूप ! आपको हम प्रणाम करते हैं । हे परम मंगल स्वरूप ! आपको हम प्रणाम करते हैं । यदुपति, वासुदेव एवं शान्तस्वरूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥३६॥

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥३७॥

हे विश्वस्वरूप ! हम आपके अनुचर महादेवके किंकर हैं। इस समय आप हमें जानेकी अनुमति प्रदान कीजिए । महर्षि नारदजीके अनुग्रहसे हमें आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ ॥३७॥

वाणीगुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३८॥

आपसे हमारी प्रार्थना है कि हमारे वचन आपके गुण-कीर्त्तनमें, हमारे दोनों कान आपके गुण-श्रवणमें, दोनों हाथ आपके प्रीतिजनक कार्योंमें, मन आपके पादपद्मोंके स्मरणमें, मस्तक आपके द्वारा अधिष्ठित इस निखिल ब्रह्माण्डके जीवोंके प्रणाममें एवं दोनों आँखें आपके प्रतिनिधि या प्रतिमूर्त्ति स्वरूप साधुओंके दर्शनमें सर्वदा नियुक्त रहें ॥३८॥

॥ इति श्रीनलकूबरमणिग्रीवयोः श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीनलकूबरमणिग्रीवका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

# गोपीजन–मनमोहन श्याम

थकित भई राधा व्रज नारि ।
जो मन ध्यान करति ही तेई अंतरजामी ए बनवारि ॥१॥
रतन जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर परम रसाल ।
मानौ चरन कमल दल लोभी, बैठे बाल मराल ॥२॥
जुगल जंघ मरकत मनि रंभा, बिपरित भाँति सँवारे ।
कटि काछनी, कनक छुद्रावलि, पहरें नंद दुलारे ॥३॥
हृदै बिसाल माल मोतिन बिच कौस्तुभ मनि अति भ्राजत ।
मानौ नभ निरमल तारागन, ता मधि चंद बिराजत ॥४॥
दुहुं कर मुरली अधरनि धारें, मोहन राग बजावत ।
चमकत दसन, मटकि नासा पुट, लटकि नैन मुख गावत ॥५॥
कुंडल झलक कपोलन मानौ मीन सुधा सर क्रीड़त ।
भ्रकुटी धनुष, नैन खंजन मनु उड़त नहीं मन ब्रीड़त ॥६॥
देखि रूप ब्रजनारि थकित भईं, क्रीट मुकुट सिर सोहत ।
ऐसे सूर स्याम सोभानिधि गोपीजन मन मोहत ॥७॥

# मानव जाति का परम कर्त्तव्य

भगवत्तामें जीवोंका इन्द्रियतर्पण संभवपर नहीं है । किन्तु इस पृथिवीके मनुष्य लोग इन्द्रियग्राह्य वस्तुको ही 'ईश्वर' समझे हुए हैं। शुद्ध भागवत धर्मको छोड़कर सर्वत्र ही Idolatory ( कल्पित मूर्त्ति-पूजा ) प्रचलित है। नास्तिक लोगोंकी यही धारणा है कि जो वस्तु प्राकृत इन्द्रियों द्वारा ग्रहणीय नहीं है, वह 'वस्तु' शब्द वाच्य ही नहीं है । Sceptic (सन्देहवादी) कहते हैं कि ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें सन्देह है। अर्थात् ये सभी व्यक्ति इन्द्रियज्ञानकी वस्तुको ही चाहते हैं या इन्द्रियतर्पणके वस्तुस्वरूप ईश्वरको । ये सभी Agnostic, Atheist और Sceptic ( अनस्तित्ववादी, नास्तिक और सन्देहवादी ) धारणासे निर्विशेष ब्रह्मज्ञान उत्पन्न और परिपुष्ट हुआ है । नास्तिक व्यक्तियोंके मतानुसार ईश्वर उनके टूटे-फूटे गृहकी रखवाली करनेवाले एक व्यक्तिविशेष हैं। किन्तु श्रीमद्भागवत और श्रीगौरसुन्दर का कहना है कि भोगमय ज्ञानमें भगवान अधिष्ठित नहीं हैं । वर्त्तमान समयमें हम लोग भगवद् विरोधी बातोंको 'भागवत-कथा' कहकर आलोचना करते हैं और उन व्याख्याओंका ही आदर करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें (६।३।२५) कहा गया है—

**प्रायेन वेद तदिदं न महाजनोऽयं**
**देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।**
**त्वय्यां जड़ाकृतमतिर्मधुपुष्पितायां**
**वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥**

मनुष्य जातिके ऊपर विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है या जगतके दूकानदारोंकी बातोंपर विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो सभी व्यक्ति महाजन सजकर, भक्तका भान कर हमें कुपथ और विपथमें ले जाते हैं, उनकी बातोंपर विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है । जो व्यक्ति मनुष्योंकी हिंसा करनेके लिए समन्वयवादके नामसे लोक-प्रतारणा और नाना प्रकारकी पाषण्डता कर रहे हैं या इस जगतके लोग जिन्हें 'महाजन' कहते हैं, उनकी बातोंपर विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है । ये लोग कोई भी महाजन नहीं हैं। श्रीमद्भागवतने ऐसा ऊँचा आदर्श जगतमें घोषणा की है। श्रीमद्भागवत 'कल्पित उपन्यास' नहीं है, यह परम निरपेक्ष ग्रन्थ है। किसी भी भाषामें ऐसा ग्रन्थ कभी भी लिखा नहीं गया। मुझमें योग्यता नहीं है, अतएव मैं दूसरे प्रकारसे भागवतका दर्शन करनेकी चेष्टा करता हूँ। किन्तु इसीलिए भागवतके 'निरस्तकुहक' या कपटताशून्य सत्यमें संकीर्णता संभवपर नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुने इस भागवत सत्यका प्रचार कर हमारी 'डकैतों' के हाथसे रक्षा की है। हम लोग 'वर्गघन' वस्तुको समझ सकते हैं। किन्तु जिस वस्तुका fourth or fifth dimension ( चतुर्थ या पञ्चम आयतन या परिसर ) है, ऐसी वस्तुको समझ नहीं सकते। तुरीय वस्तुके सम्बन्धमें हम लोग धारणा नहीं कर सकते । Parabolic Curve

( क्षेपणीक्षेत्राकार वक्ररेखा ) और two parallel straight lines ( दो समानान्तर रेखाएँ ) कहाँ मिलित होती हैं, नहीं जानते । मनुष्य ज्ञानमें करणापाटव दोष अर्थात् इन्द्रियोंकी अपटुतारूप दोष वर्त्तमान है । इन्द्रियग्राह्य कार्योंमें सर्वदा ही चारों दोष ( भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव ) संभवपर हैं । जिस किसीको 'महाजन,' 'गुरु', 'दक्ष' समझना चञ्चलता मात्र है । सत्य वस्तु भगवान जब कृपा कर स्वयं प्रकाशित होते हैं, उस समय ही उनकी कृपालोकमें उनका स्वरूप दर्शन कर सकते हैं । नृसिंहदेवने हिरण्यकशिपुके निकट प्रकाशित होकर अपना स्वरूप दिखलाया था । प्रह्लादजीके निकट वे प्रकाशित हुए थे । श्रीचैतन्यदेव जब हमारी हृदय गुफामें प्रकाशित हों, तभी हम लोग यह जानेंगे कि जगतके लोग भूतपूजक हैं, पुतलीपूजक हैं, काल्पनिक और इन्द्रियग्राह्य वस्तुके सेवक हैं । तब ही हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर सकेंगे कि इन सभी व्यक्तियोंको बात कदापि न ग्रहण करेंगे । पृथिवीसे मुक्त कराने वाले, स्वर्ग-प्रदान करने वाले, व्यक्तियोंको भागवत में महाजन नहीं कहा गया है । वे लोग हिंसक हैं । वैतानिक कर्मनिपुण अर्थात् फलाटवीचारी एक अन्धा दूसरे अन्धे को अन्धकार-राज्यमें प्रेरण करता है । जो व्यक्ति हमें कर्मके फाँसमें बाँधते हैं, उनका परामर्श ग्रहण करनेसे कदापि मंगल न होगा । मधुपुष्पित वाक्य द्वारा प्रलोभित होने पर कदापि हमारा मंगल न होगा । सुना जाता है कि कलकत्तेमें गुण्डे लोग नकली सोनेसे लोगोंको प्रलोभित कर पश्चात् उनका सर्वस्व हरण कर लेते हैं ।

एकमात्र श्रीकृष्णसंकीर्त्तन द्वारा ही हमें सब प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त होंगी । हमारे चित्तदर्पणमें बाह्य विषयरूप धूलि बहुत अधिक जमी हुई है । अतएव इस भोगोन्मुख चित्तमें सत्यवस्तु प्रतिबिम्बित नहीं हो पा रही है । जब तक हम लोग जगतके लोगोंको 'छोटा' समझेंगे, जब तक सभी व्यक्ति ही हरिभजन कर रहे हैं, यह अनुभव प्राप्त न होगा, तब तक हमारे चित्तदर्पणका मार्जन न होगा ।

कृष्णसंकीर्त्तन महादावाग्निका निर्वापण करता है । कृष्णसंकीर्त्तन ही एकमात्र चरम श्रेयः प्रदान करता है । वह श्रेयः अत्यन्त स्निग्ध है । कृष्णसंकीर्त्तन विद्यावधूजीवन स्वरूप है । पढ़ने-लिखने और पाण्डित्यकी आखिरी बात 'श्रीहरिनाम' है । बुद्धिमान न होने से हरिनाम नहीं होता । जो व्यक्ति जगतमें बड़े बननेके इच्छुक हैं, स्वर्गप्रयासी हैं, ब्रह्मके साथ मिल जानेके लिए व्यस्त हैं, वे पण्डित नहीं, मूर्खमात्र हैं ।

कुछ लोगोंको यह धारणा है कि जो लोग लिखना-पढ़ना कम जानते हैं, जो व्यक्ति संसारी कार्यसे retired या अवसर प्राप्त हो चुके हैं, दिखावटी भावुकता दिखलाने वाले प्राकृत सहजिया लोग हैं, अबला स्त्रीजातिके हैं या नीच जातिके हैं । व्यक्ति उनके लिए ही कृष्ण-संकीर्त्तन है या जो लोग व्यवसायके लिए, पेट भरनेके लिए, ताल-स्वर-लय-मान कवित्व दिखलानेके लिए emotion ( भावुकता ) दिखलाते हैं, वे ही कीर्त्तनीया हैं और उनका कीर्त्तित विषय ही कीर्त्तन है । यह कदापि हरिकीर्तन नहीं, मायाका कीर्त्तन या व्यवसाय मात्र है । जो लोग हीरा नहीं

पहचानते, उनको प्रतारणाकारी व्यवसायी काँच दिखलाकर ठग लेते हैं । उसी प्रकार व्यवसायी लोग सुर, ताल, लय, मान दिखाकर साधारण लोगोंको 'हरिनाम' के नामपर प्रतारणा करते हैं ।

हरिनामसे सर्वात्मस्नपनता होती है । कार्यसे ही कारण जाना जाता है। उसी प्रकार हरिनाम ग्रहण की बात फल देखकर ही जाना जाता है । यदि हरिनाम करते-करते किसी की सांसारिक बुद्धि या प्रवृत्ति बढ़ जाती है, तो उनका कीर्त्तित विषय 'हरिनाम' नहीं है ।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

# तत्वज्ञान–प्राप्तिका उपाय

मायाबद्ध जीव संसारमें भोगबुद्धिके वशीभूत होकर भ्रमण कर रहे हैं । जिस किसी प्रकारसे भोगोंका संग्रह करनेके लिए वे सर्वदा व्यस्त रहते हैं । किन्तु भोग करते करते थक जाने पर भी उनकी भोग-पिपासा दूर नहीं होती और न उन्हें शान्ति ही मिलती है । उस समय अत्यन्त भाग्यवान जीव इस बातकी यथार्थता उपलब्धि करते हैं—"भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता । तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णाः ॥ कालो न जातो, वयमेव जाताः ।" अर्थात् हम भोगोंको भोग कर तृप्त नहीं होते । क्योंकि वे ही हमें ग्रास कर लेते हैं । हमारी भोगपिपासा नहीं मिटती, किन्तु हम ही जीर्ण होते जा रहे हैं। काल अनादि है और सर्वदा ही गमनशील है। किन्तु हमारी सद्बुद्धि उदित नहीं होती। यदि साधुसंगके द्वारा यथार्थ विवेकका उदय हो, तो महाप्रभु प्रचारित इस शिक्षाका मर्म समझनेका सुयोग प्राप्त होता है—

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा
जाता तेषां मयि न करुणा न त्रपा नोपशान्ति ।
उत्सृज्यैतानथ यदुपते साम्प्रदं लब्धबुद्धि-
स्त्वामायातः शरणमभयं मां नियुङ्क्ष्वात्मदास्ये ॥

अर्थात् हे यदुपते ! मैंने कामादि छः शत्रुओंके कितने ही दुष्ट आदेशोंका पालन किया है। किन्तु फिर भी उनकी मेरे प्रति करुणा नहीं हुई । मैं भी इतना निर्लज्ज हूँ कि मैं उनकी दासताका परित्याग भी नहीं कर पा रहा हूँ । अतएव मुझे शान्ति भी नहीं मिल रही है । वर्त्तमान समयमें साधु कृपासे मुझे सद्बुद्धि प्राप्त हुई है । अतएव मैं इन सब दुष्ट मालिकोंकी सेवासे निवृत्त होकर आपके श्रीचरणकमलोंमें अभयस्थान ग्रहण करनेके लिए आया हुआ हूँ । आप मुझे अपनी सेवामें नियुक्त कीजिए ।

इस प्रकारके तत्वज्ञानकी प्राप्तिमें बाधक स्वरूपसे हमारे सम्मुख, चारों ओर और सर्वत्र कई प्रकारकी बाधाएँ उपस्थित हैं ।

वातावरणकी हवासे बचना बड़ा ही कठिन कार्य है । दुष्पार माया अपने जालमें सबको आबद्ध रखना चाहती है । बड़े-बड़े मनीषी लोग भी उस मायाके चक्रमें पड़े हुए हैं। कोई भी व्यक्ति भगवानके पादपद्मोंमें शरणागत होना नहीं चाहता। भक्तिराज्यमें विघ्न पैदा करने वाली बाधाएँ मूर्तिमान रूपसे जगतमें विचरण कर रही हैं। उनका कुछ परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

सर्वप्रथम चार्वाक नामक एक ब्राह्मण, जो बृहस्पतिका शिष्य था, उसका कहना ऐसा है—"सुख-प्राप्ति एवं दुःख-परिहार करनेके लिए लोगोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है । वह प्रवृत्ति बिना किसी उपायके अवलम्बन किये चरितार्थ नहीं हो सकती। चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है । देहसे पृथक् रूपसे आत्मा नहीं है । अतएव आत्मा की पृथक् सत्ता देखी नहीं जाती । प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है । आत्मा प्रत्यक्ष देखी नहीं जाती । इसलिए देह ही आत्मा है। अङ्गा-लिङ्गन सुख ही पुरुषार्थ है । दुःख मिश्रित सुखको छोड़कर निरवच्छिन्न या दुःखरहित सुख पाया नहीं जाता । अतएव दुःखकी निवृत्ति करते हुए सुखभोग करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है । इसलिए जब तक जीवित रहें, तब तक सुखपूर्वक जीवित रहना चाहिए । देहके जल जानेपर पुनरा-गमन नहीं है। अतएव पापपुण्यादिका विचार करना अनावश्यक है । ऋण लेकर भी घी खाना चाहिए । क्योंकि मृत शरीर भोजन नहीं करता । यदि ऐसा ही हो, तो कोई व्यक्ति विदेशमें जानेपर घरमें रहकर उसका श्राद्ध करनेसे ही वह भोजन प्राप्त कर सकेगा। इसलिए जीवित देहका सुख-विधान ही एकमात्र कर्त्तव्य है।" किसी समय शुक्राचार्य तपस्या करने चले गये। उस समय चार्वाकने शुक्राचार्यका रूप धारण कर असुर समाजमें यह मतवाद प्रचार किया था, जिससे वे लोग भ्रान्त हो गये थे। इस समय भी कई व्यक्ति इस विचारका बहुत आदर करते हैं।

दूसरे कपिल नामक सांख्याचार्यने ईश्वर को अस्वीकार करनेके लिए कुछ युक्तियाँ दिखलाकर कहा है—"यह जगत २५ तत्वोंसे बना है—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और जीव । सत्त्व, रजः, तमः—इन तीनों गुणों द्वारा जगतकी सृष्टि होती है । ये ही उपादान कारण हैं। यह गुणात्मिका माया और आत्मा नित्य हैं। ईश्वर नहीं हैं । यदि ईश्वर हों, तो वे बद्ध अथवा मुक्त होंगे। बद्ध होनेसे वे सृष्टि आदि शक्तिरहित हैं और मुक्त होनेसे सृष्टि आदि करनेकी इच्छा उनमें नहीं रहेगी । अतएव वे रहने पर भी निमित्त रूपसे ही रहते हैं। इसलिए प्रकृति द्वारा ही सृष्टि आदि कार्य होते हैं । प्राकृतिक दुःखोंके अविवेकसे त्रितापादि दुःख प्राप्त होते हैं और उसके जान लेने पर त्रिविध दुःखका विनाश हो जाता है और पुरुष ( जीव ) प्रकृतिके अधिकारसे निवृत्त हो जाता है—यही उसकी आनन्द-प्राप्ति है । जिस प्रकार भारवाहीका भार हट जाने पर वह सुखी होता है, ठीक उसी प्रकारसे।"

तीसरे, पातञ्जलि हैं । वे कहते हैं—"प्रकृति-पुरुषके विवेकाभ्याससे वैराग्य होने पर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,

धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा प्रकृतिसे मुक्त होने पर ही जीव आनन्द प्राप्त करता है । सभी बाहरी वस्तुएँ इन्द्रियों द्वारा चित्तमें प्रतिफलित होती हैं । जीव चित्तका द्रष्टा है, वह चित्त द्वारा बाहरी वस्तुओंको जान पाता है। केवल बाहरी वस्तुएँ चित्तमें उदित होने पर इन्द्रिय-प्रणाली द्वारा चित्त उसका अवयव ग्रहण कर धारण करता है। चित्तके ऐसे ज्ञानांशको 'प्रत्यय' कहा जाता है । इसी प्रत्ययसे भोगका उदय होता है। बुद्धि, मन और अहंकार—तीनों मिलकर 'चित्त' होता है । चित्तका बुद्धि-अंश सत्त्वगुणात्मक है। वही रजः और तमोगुणकी बुद्धिके साथ अहंकार रूप अभिमान और बाहरी विषय-ग्रहणकारी मन रूपसे परिणत होता है। निर्मल चित्तको सत्त्व स्वरूप कहा जाता है। साधक द्वारा यत्नपूर्वक सभी इन्द्रियों के साथ मन और अहंवृत्तिको निरुद्ध करने पर समप्रज्ञात समाधि होती है। केवल संस्कारात्मक प्रकृतिरूपता प्राप्त होने पर असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इस संस्कारात्मक प्रकृतिको भी वर्जन कर निर्गुण पुरुष रूपसे प्रतिष्ठित होने पर कैवल्यावस्था होती है। इस अवस्था को चित्तकी विनाशावस्था कही जाती है। किन्तु वस्तुतः चित्तका विनाश सम्यक् प्रकार से नहीं होता, सूक्ष्म शरीरके नष्ट होने पर वह संभव है। दृश्य वस्तुके अभावको ही विनाश कहा जाता है। इन सभी साधनोंके प्रारम्भमें यम नियम, आसन, प्राणायाम आदि साधनों की आवश्यकता है।"

चौथे, कणाद वैशेषिक दर्शनके प्रणेता हैं। वे चाँवलके कणोंका भोजन करते थे। इसलिए वे कणाद कहे जाते थे । इनका कहना है—"जागतिक सभी वस्तुएँ क्षुद्र क्षुद्र अवयव द्वारा गठित हैं । इन अवयवोंको 'परमाणु' कहते हैं। ये प्रत्येक ही एक-एक 'विशेष' हैं। इनमें कुछ ऐसा धर्म है, जिसके द्वारा इनमें परस्पर पार्थक्य संस्थापित होता है। जिसके द्वारा अभ्युदय ( उन्नति ) हो और निःश्रेयस प्राप्त हो, वही धर्म है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, काल, दिशाएँ, आत्मा और मन—ये नौ द्रव्य हैं। इनमें दो विभाग हैं—पृथिवी, जल और अग्नि अनित्य द्रव्य हैं और वायु, आकाश, काल, दिशाएँ, मन और आत्मा नित्य द्रव्य हैं । अनित्य तीनके अविभाज्य अंशका नाम परमाणु है । वह नित्य है। उसे द्रव्य न कहकर 'विशेष' कहते हैं । वस्तु दो प्रकार की हैं—नित्य और अनित्य । अवयवयुक्त सभी वस्तुएँ अनित्य हैं। क्योंकि इनकी उत्पत्ति और विनाश है। जिनके अवयव देखे नहीं जाते, वे नित्य देहेन्द्रियादि विलक्षण विभु आत्मा—इन नौ विशेष गुणोंके आश्रय हैं । द्रव्यगुण कर्म-सामान्य विशेष समयके सामर्थ्य और वैधर्म्य के कारण तत्त्वज्ञान द्वारा ईश्वरोपासनामें नौ वैशेषिक गुणोंकी प्रागभावासहवृत्ति ध्वंस होनेपर आनन्द-प्राप्ति होती है।"

पाँचवें, गौतम ऋषि न्याय-दर्शनके प्रणेता हैं । वे कहते हैं—"प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेतुज्ञान, छल, व्याति और निग्रह स्थान—इन सोलह पदार्थों का तत्त्वज्ञान होनेपर सर्वोत्कृष्ट श्रेयः प्राप्त होता है । जन्म होनेसे ही दुःख अवश्यंभावी है । मिथ्याज्ञानसे संसार-चक्र बारबार आवर्त्तित हो रहा है । सभी पदार्थोंके

तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञान नष्ट हो जाता है । उसके साथ राग-द्वेष आदि अभिनिवेश भी दूर होते हैं । राग-द्वेषादि दूर होनेपर धर्माधर्म विनाश और उसके द्वारा पुनः पुनः जन्मादिकी निवृत्ति होती है । उसका मूल-दुःख भी नष्ट हो जाता है । दुःखके आत्यन्तिक विनाशको ही अपवर्ग या मोक्ष कहते हैं ।"

छठे, जैमिनी पूर्व-मीमांसा दर्शनके प्रणेता हैं । वे कहते हैं—"कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड भेदसे वेद तीन भागोंमें विभक्त है । जिस अंशमें यज्ञादि विषय कहे गए हैं, वही कर्मकाण्ड है । वैदिक सभी क्रियाओंका 'अपूर्व' नामक फल उत्पादन सामर्थ्य है । वैदिक विधियोंमें कहे गए कर्मोंमें पुत्रकलत्रादि ऐहिक सम्पत्ति प्रदान करनेकी क्षमता है । किन्तु देहान्त होनेपर स्वर्गफल प्रदान ही इनकी विशेष क्षमता है । वेदना लक्षण अर्थ ही धर्म है । जिन सभी वैदिक शब्दोंमें प्रेरणा है, उन सभी विधि ज्ञापक शब्दोंमें परिलक्षित कर्म, जो कर्त्ताके अभ्युदय और सुखोत्पत्ति-साधक है और दूसरे जीवोंके दुःखोत्पादक नहीं है, उसे ही धर्म कहते हैं । परलोकमें स्वर्गादि सुख प्रदान करनेवाले और इह लोकमें पुत्र-कलत्र-ऐश्वर्यादि प्रापक वैदिक यज्ञ, दान और होमादि कर्मानुष्ठान ही धर्म कहे जा सकते हैं । कर्ममें प्रवृत्त न करानेवाले वेदोंके वाक्य ही उन्नतिके कारण हैं ।"

भगवान वेदव्यासने इन सभी दर्शनोंके मतवादोंका खण्डन कर उत्तर-मीमांसा या वेदान्त-दर्शनकी रचना की है । उसका दूसरा नाम ब्रह्म-सूत्र है । वेदान्तका पहला सूत्र है—'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा ।' इसकी भाष्य-भूमिका में कहा गया है—"यो वै भूमा तत् सुखम् नान्यत् सुखमस्ति । भूमैव सुखम् भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यम् ॥ परीक्ष्य लोकान् कर्म-चितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥"

अर्थात् विपुल सुख स्वरूप श्रीहरि ही सुखोंके मूल हैं । उनको छोड़कर और कहीं भी सुख नहीं है । कर्मप्रापक सभी लोकोंमें सुखका अभाव जान लेनेपर ब्रह्मजिज्ञासु व्यक्ति समित्पाणि होकर (श्रद्धायुक्त होकर) तत्त्वज्ञानी गुरुके निकट गमन करेंगे । कर्मोंके द्वारा वैकुण्ठ-प्राप्ति नहीं होती । दुःखप्रद अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त अनित्य फल कर्मादि-साधक कर्मत्याग कर ब्रह्म विषयकी जिज्ञासा की ही आवश्यकता है । यही तत्त्वज्ञान-प्राप्ति है । यह किस प्रकार प्राप्त होती है ? तत्त्व-ज्ञानी या भगवद् तत्त्वज्ञ साधुओंके निकट प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवावृत्तिके साथ तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा करनी चाहिए । भगवद् भक्त लोग ही यथार्थ तत्त्वज्ञ हैं । वे शास्त्रोंकी सुयुक्तियों द्वारा भगवत्तत्वका उपदेश प्रदान करते हैं । तत्त्वज्ञान-प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है । श्रीमद्भागवतमें बहुतसे स्थानोंमें इसीका उपदेश है । तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेका यही एकमात्र क्रम या पथ है ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

# प्रश्नोत्तर

**( निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव )**

१– प्रीतिका प्राण स्वरूप क्या है ?

"नैष्ठिकता ही प्रीति-तत्वका जीवन-स्वरूप है।"

—'समालोचना', स० तो० २।६

२– नैष्ठिक भक्तका क्या संकल्प होता है ?

"कृष्णभक्त लोग ही मेरे माता-पिता हैं, कृष्ण भक्त ही मेरे भाई-बन्धु हैं, कृष्ण ही मेरे एकमात्र पति और कृष्णके संसारको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा—ऐसा वह संकल्प करता है।"

—प्रे० प्र० ७ वाँ प्र०

३– भजनमें सबसे अधिक किसकी प्रयोजनीयता है ?

"भजनमें केवल दृढ़ता और सरलताकी आवश्यकता है।"

—कृ० क० ११२

४– तथाकथित समन्वयवादकी निरपेक्षता और वैराग्यकी अपेक्षा निष्ठा और भक्त-संग लालसाकी श्रेष्ठता क्यों है ?

"परमहंसकी प्रशंसा करते समय लिखा है कि वे साम्प्रदायिक धर्मके विरोधी हैं और समस्त प्रकारके साम्प्रदायिक व्यक्तियोंके बीच रहकर भी आनन्द प्राप्त करते हैं। इस परिचयसे हम जानेंगे कि परमहंस महाशय एक ज्ञानी व्यक्ति हैं। किन्तु उनकी भक्तिका कोई विशेष परिचय नहीं है। ज्ञानका यही धर्म है कि वह साधकको फलकालमें निःसङ्ग और निरपेक्ष कर देता है। भक्तिका धर्म यही है कि वह साधकको फलकालमें भक्तसंगलिप्सा और इष्टवस्तुमें नैष्ठिकी मति प्रदान करती है। इसमें कौनसा श्रेष्ठ है ? ऐसा पूछने पर श्रीश्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवने हमें बतलाया है कि नैष्ठिकी मति और भक्तसगलालसा वैराग्य और निरपेक्षतासे अनन्त गुणोंमें श्रेष्ठ और उत्तम हैं।"

—'समालोचना' स० तो २।६

५– रागात्मिका सेवामें लोभोदयका क्या फल है ?

"कृष्णसेवा, वैष्णवसेवा एवं नामालोचना में लोभके उदय होनेपर और दूसरे विषयोंमें लोभ नहीं रह सकता। व्रजवासियोंकी कृष्णसेवा देखकर उसमें जिस भाग्यवान व्यक्तिका लोभ होता है, उसका उस लोभकी कृपासे रागानुगाभक्तिमें अधिकार प्राप्त होता है। जिस परिमाणमें रागात्मिका सेवामें लोभ होता है, उसी परिमाणमें दूसरे विषयों में लोभ दूर होता रहता है।"

—'लौल्य', स० तो० १०।११

७– रुचि किसे कहते हैं ? आत्मवृत्तिकी स्वाभाविकी रुचिके व्यक्तिक्रमकी चेष्टा करने से क्या विपत्ति होती है ?

"प्राचीन और आधुनिक संस्काररूप दोनों प्रकारकी सुकृतियों द्वारा उत्पन्न प्रवृत्तिको ही 'रुचि' कहा जा सकता है। जीवात्मामें यह रुचि स्वाभाविक है। जिनका शृङ्गार-रसमें रुचि नहीं है, परन्तु दास्य या सख्यमें रुचि है, वे उस रसमें उपदेश ग्रहण करेंगे, नहीं तो भारी अनर्थ हो जायगा। महात्मा श्यामानन्दकी सिद्ध स्वरुचि पहले जानी नहीं जा सकी। इसलिए पहले उन्हें सख्यरसमें प्रवेश कराया गया। पश्चात् श्रीजीव गोस्वामीकी कृपासे रुचि समेत भजन प्राप्त हुआ—यह लोकप्रसिद्ध है। श्रीकृष्णचैतन्यावतारमें योग्यता और अधिकारका विचार ही प्रबल है।"

—'भजन-प्रणाली' ह० चि०

८– किनमें सद्धर्म-प्रवर्त्तक रुचि उत्पन्न होती है ?

"जिनका हृदय निर्गुण है, उनकी ही व्रज-जनोंके आनुगत्यमें रुचि उत्पन्न होती है।

अतएव रागानुगाभक्तिमें लोभ या रुचि ही एकमात्र सद्धर्म-प्रवर्त्तक है।"

—जै० ध० २१ वाँ अ०

९– आसक्ति किसे कहते हैं ?

"रुचिकी गाढ़तर अवस्थाका नाम आसक्ति है।"

—चै० शि० ५।२

१०– भाव किसे कहते हैं ? वह प्रेम-भक्तिकी कौनसी अवस्था है ?

"प्रेम भक्ति ही साधन-भक्तिका फल है। प्रेमभक्तिकी दो अवस्थाएँ हैं—(१) भाव और (२) प्रेम। प्रेमकी उपमा सूर्यसे करनेसे भावको उसका किरण कहा जा सकता है। भाव विशुद्ध सत्त्वस्वरूप है, रुचिद्वारा चित्तको द्रवित करता है। पहले जिस भक्ति-सामान्य-लक्षणमें कृष्णानुशीलन-कार्यका उल्लेख है, वह जिस अवस्थामें विशुद्धसत्त्वस्वरूप होकर रुचि द्वारा चित्तको द्रवित करता है, उसी अवस्थाको 'भाव' कहा जा सकता है। भाव मनोवृत्तिमें आविर्भूत होकर मनोवृत्तिकी स्वरूपता प्राप्त करता है। तत्त्वतः भाव स्वतः प्रकाश रूप है, किन्तु मनोवृत्तिगत होकर प्रकाश्य रूपसे भासमान या प्रतीत होता है।"

—चै० शि० ५।१

११– वैध-साधनाभिनिवेशज और रागानुगा-साधनाभिनिवेशज भावके उदाहरण क्या क्या हैं ?

"श्रीमन्नारद ऋषिका जीवन ही वैध-साधनाभिनिवेशज भावका उदाहरण है। पद्मपुराणोक्त रागानुगा भक्ता स्त्रीकी भाव-प्राप्ति ही रागानुगा-साधनाभिनिवेशज भावका उदाहरण है।"

—चै० शि० ५।१

१२—भावभक्तके जीवनमें क्या कोई अवैध-कार्य देखा जाता है ?

"भाव-भक्त जीवन वैधजीवनको एकदम परिवर्त्तन करता है, ऐसी बात नहीं है। किन्तु भावुकके सभी कार्य ही विधि-स्वतन्त्र जान पड़ते हैं। प्रकृतिस्थ पूर्णरति उसके समस्त कार्योंको नियमित करती है। भावुक स्वैर-भावापन्न होने पर भी किसी उत्पातकी संभावना नहीं है। सबसे पहले तो भावुककी पुण्य-पापमें कोई रुचि नहीं रहती, कर्त्तव्य-कर्म नामक कोई कर्म भी भावुक नहीं करते, किसी का अनुकरण करनेकी प्रवृत्ति भी उनमें नहीं होती। शरीर, मन, आत्मा, समाज, आदिकी संरक्षण-क्रिया पूर्व-पूर्व अभ्यासके कारण अनायास ही होती रहती है। जब पुण्यकार्योंमें ही उनकी उदासीनता है, तब पापकार्य उनके द्वारा किसी प्रकार भी संभव-पर नहीं हैं।"

—चै० शि० ५।१

१३— भावभक्तके प्रति अवज्ञा-फलसे वैध-भक्तकी क्या गति होती है ?

"जातरति-व्यक्ति सर्व प्रकारसे कृतार्थ हैं। उनके प्रति अवज्ञा करने पर वैध-भक्तका भक्तिधन क्रमशः नष्ट होता जायगा। भाव-भक्तका जीवन प्रायः साधन-भक्तके जीवन सदृश है। तथापि भावजीवनमें कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो वैध-जीवनमें नहीं हैं।"

—चै० शि० ५।१

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

# हमारी इष्टगोष्ठी

प्रथम छात्र—भाई ! हमारे पारमार्थिक विद्यालयमें हमने अब तक जिन जिन विषयों पर उपदेश प्राप्त किया है, प्रतिदिन शामको हम लोग एक स्थान पर बैठकर उनकी आलोचना किया करें । इस प्रकार आलोच्य विषयको आपसी बातचीत द्वारा भली प्रकार ग्रहण कर उसे स्मृति-पटलपर अंकित कर सकेंगे ।

द्वितीय छात्र—तुम्हारा यह प्रस्ताव अति उत्तम है । "शुभस्य शीघ्रम् ।" अच्छा, आज इसी शुभ-मुहूर्त्तमें ही उसका प्रारम्भ किया जाय । पहले तुम प्रश्न करो, मैं उत्तर देनेकी चेष्टा करूँगा; उसमें त्रुटि, भूल आदि जो कुछ अशुद्धि हो, उसे तुम संशोधन कर लेना ।

प्रथम छात्र—अच्छा, प्रारम्भिक प्रश्न ही मैं सबसे पहले करता हूँ । बोलो भाई, मैं हरिभजन क्यों करूँ ?

द्वितीय छात्र—तुम्हारे प्रश्नमें मुख्य रूपसे तीन शब्द हैं—'मैं', 'हरि' और 'भजन' । इसके प्रथम शब्दके सम्बन्धमें हमारी क्या धारणा है ? मैं क्या हूँ, यही प्रथम आलोच्य विषय है । शेष दोनों शब्दोंके विषयमें क्रमशः विचार किया जायगा ।

प्रथम छात्र—अच्छी बात है । किन्तु तुम्हारी प्रत्येक बात शास्त्र सम्मत होनी चाहिए । नहीं तो वह अग्राह्य होगी ।

द्वितीय छात्र—ठीक है । ऐसा ही प्रयत्न करूँगा । बद्धजीव मात्र ही अस्थि, मज्जा, रक्त, माँस और चर्मादिमय नश्वर देहको 'मैं' कहता है, जो सम्पूर्ण रूपसे भ्रममात्र है ।

प्रथम छात्र—इसका क्या प्रमाण है ?

द्वितीय छात्र—श्रीमद्भागवत (१०।८४।१३) ही इसका प्रमाण है—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः
कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु
स एव गोखरः ॥

अर्थात् जो इस स्थूल-शरीरमें आत्मबुद्धि रखता है, वह गौओंके बीच गदहेके समान है या अत्यन्त निर्बोध है । इसलिए यह स्थूल शरीर ही 'मैं' नहीं हूँ ।

प्रथम छात्र—स्थूल शरीर आत्मा नहीं है, इसका व्यतिरेक प्रमाण तो पा लिया । अब 'मैं' कौन हूँ और क्या हूँ ?—यह बात बतलाइए ।

द्वितीय छात्र—'मैं' 'आत्मा', या 'जीव' स्थूल और सूक्ष्म देहसे भिन्न एक वस्तु है, जिसके अभावमें शरीर 'शवमात्र' कहलाता है । गीताशास्त्रमें इस वस्तुको अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वगत और अचल कहा गया है ( गीता २।२३—२४) । यहा वह वस्तु है, जो सनातन या सर्वदा वर्तमान और षड्विकार रहित है । इसलिए अज अर्थात् जन्मरहित और नित्य है । जन्ममरणशील शरीरके विनाश आदि होनेपर भी इस वस्तुका कदापि विनाश नहीं होता ।

प्रथम छात्र—तो यह वस्तु कैसी होती है ?

द्वितीय छात्र—उपनिषदोंका कहना है कि इस जीवको केशके अग्रभागके सौवें भागके सौवें भागके समान या दस हजार भागके एक भागके समान सूक्ष्म जानना चाहिए । यथा—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥
(श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।९)

प्रथम छात्र—तो हम लोग उसे कैसे जान सकते हैं ?

द्वितीय छात्र—जड़ आँखों द्वारा नहीं देखे जानेपर भी विशुद्ध चित्तमें इसकी उपलब्धि होती है। मुण्डकोपनिषद्में कहा गया है—

**"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः ।"**

प्रथम छात्र— इस 'मैं', या 'आत्मा', या जीवका क्या स्वरूप है ?

द्वितीय छात्र—विशेषरूपसे यह उल्लेखनीय है कि यह पाँच भौतिक जड़ देह 'मैं' या 'आत्मा' नहीं है । साथ ही मन, बुद्धि, और अहंकारात्मक लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर भी 'मैं' या 'आत्मा' नहीं है । आत्मा या जीव स्वरूपतः भगवानकी तटस्था शक्ति या जीव शक्तिसे प्रकटित अणुचैतन्य वस्तु है । इसे विभिन्नांश चिद्तत्त्व भी कहा जा सकता है। यह कृष्णका नित्य दास है। चिज्जगत और जड़जगत—इन दोनों जगतोंके साथ जीवका सम्बन्ध है। इसलिए स्वरूपतः अणुचित् होने पर भी जड़शक्ति माया द्वारा आबद्ध होने योग्य होता है । दूसरी ओर कृष्णभजनके द्वारा चित् शक्तिके उदित होनेपर मायामुक्त होकर चिज्जगतमें कृष्णदास्य पानेका अधिकारी भी होता है । कृष्णके साथ जीवका 'भेदाभेद' सम्बन्ध नित्य वर्त्तमान है।

प्रथम छात्र—भेदाभेदके सम्बन्धमें पीछे सुनूँगा। कृष्णदास्यकी बात कुछ अटपटी सी लगती है। दासत्वके लिए लालायित होनेकी क्या आवश्यकता है ? दास बनना क्या कोई गौरवकी बात है ?

द्वितीय छात्र— तुम सांसारिक दासताकी दृष्टिसे विचार कर कृष्णदासत्वको भी उपेक्षणीय मान रहे हो। किन्तु बात ऐसी नहीं है। कृष्णदासत्व जीवका स्वरूपगत स्वभाव है। अपरिहार्य एवं स्वरूपतः नित्य है। उसे प्राप्त करना ही विशेष गौरवकी बात है।

प्रथम छात्र—यह कैसे संभव है ? इसकी प्रामाणिकता और औचित्य कहाँ है ?

द्वितीय छात्र—इस सम्बन्धमें अधिक कुछ न कहकर श्रीचैतन्य भागवतकी निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत करता हूँ—

**"नयन भरिया देख दासेर प्रभाव ।**
**हेन दास्यभावे कृष्णे कर' अनुराग ॥**
**अल्प हेन ना मानिह 'कृष्णदास' नाम ।**
**अल्प भाग्ये दास नाहि करे भगवान् ॥**
**दास नामे ब्रह्मा शिव हरिष अन्तर ।**
**धरणी-धरेन्द्र चाहे दास अधिकार ॥"**

(म० २३/४६३, ४६४,४७२)

'शरणागति' में ठाकुर भक्तिविनोदजीने कहा है—

**"कीट जन्म हउ यथा तुया दास ।**
**बहिर्मुख ब्रह्मजन्मे नाहि आश ।"**

'श्रीमुकुन्दमाला' स्तोत्रमें श्रीकुलशेखर आलवार भी कहते हैं—

**"त्वद् भृत्य-भृत्य-परिचारक भृत्य-भृत्य ।**
**भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥"**

अर्थात् हे भगवन् ! आप मुझे अपने दासों के दासोंके दास और पुनः उस वैष्णवदासानुदासका भी दास समझें । आशा है कि इससे कृष्णदासत्वके बारेमें तुम्हारी जो हीन धारणा है, वह दूर होगी और उसकी जगह गौरवात्मक धारणा बनेगी।

सन्ध्या अधिक हो चुकी है। आज यहीं तक रहने दें । दूसरे दिन इसकी विस्तृत आलोचना करेंगे। (क्रमशः)

**—श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनूदित**

**अनुवादक—श्रीओंप्रकाश दासाधिकारी**

★

# श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

(गतांक से आगे)

## जीवके नित्य शरीरमें देह और देहीका भेद नहीं

रागानुगा भक्ति साधन-तत्त्वके प्रसंगमें यह पहले ही कहा जा चुका है कि जो साधक व्रजवासियोंके भावके प्रति लुब्ध होकर भजन करेंगे, वे उन-उन व्रजवासियोंके अनुगत होकर साधन करेंगे । इसलिए श्रीराधाकृष्णकी नित्यलीलामें प्रवेशके लिये जो प्रणाली उपयोगी है, उसकी प्रेमारुरुक्षु व्यक्ति अपने गुरुदेवकी कृपासे अवश्य ही शिक्षा ग्रहण करेंगे । इस रसमें साधक अपने गोपीदेहकी भावना करके श्रीराधिकाके यूथमें प्रवेश करते हैं । साधक पुरुष-शरीरमें होनेपर भी वह भाव-देहमें गोपी हो सकता है; इसे असम्भव नहीं मानना चाहिए । प्रत्येक जीव ही कृष्णकी तटस्था शक्ति है । स्थूल देहमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व कल्पित होता है । लिङ्ग शरीरमें उसका प्राग्भाव जन्मता है । जीवका नित्यशुद्ध देह—चिन्मय होता है । उसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व भेद नहीं होता[1] । चिन्मय शरीर स्वतंत्र शुद्धकाममय होता है । जब जो भाव होता है, उसीके अनुसार स्त्रीत्व या पुरुषत्व हो पड़ता है । शान्तरसमें नपुंसकत्व, दास्यरसमें पुरुषत्व, मातृवात्सल्य रसमें स्त्रीत्व, पितृवात्सल्य रसमें पुरुषत्व तथा मधुर रसमें सभी जीवोंका शुद्ध स्त्रीत्व सिद्ध होता है । सभी एक ही परम पुरुष श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं ।

कौन जीवका कौनसा रस है, वह जीवकी गूढ़ रुचिके द्वारा परिलक्षित होता है । भजन-श्रद्धाके उदयके समय साधक उसी रुचिके अनुसार अपने रुचिकर रसको पसंद करते हैं । उसी रुचिकी भलीभाँति परीक्षा करके गुरुदेव उस साधकको भजनदीक्षा प्रदान करते हैं ।

श्रृङ्गार रसयुक्त प्रेमके स्वरूपका वर्णन बृहदारण्यक उपनिषदमें किया गया है[2] ।

## सिद्ध-देहकी भावना

श्रीकृष्ण श्रृङ्गार-रसके सर्वस्व हैं । श्रीमती राधिकाकी कृपाके बिना श्रीकृष्णको इस रसमें पाया नहीं जा सकता । इसलिए श्रीगुरुदेवकी कृपा प्राप्त कर श्रीगौरचन्द्रके

---

१. बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्ताय कल्पते ॥
नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यदयच्छरीरमादत्ते तेन तेन स वक्ष्यते ॥ (श्वेताश्वतर)
क्वचित् पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमंदधीः । देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथा कर्मगुणं भवः ॥
(भा ४।२९।२०)

२. तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवायं पुरुषः
प्रज्ञानेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्च वेद नान्तरम् ॥ (बृहदारण्यक)

द्वारा समय-समय पर प्रकटित भावोंका स्मरण करके श्रीश्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका स्मरण करनेसे उज्ज्वल-भावका उदय होता है। इस जड़ जगतमें प्रात्यहिक साधक जड़ देहमें वास करके भी भावना-मार्गमें श्रीगुरुदेवकी कृपासे नित्यसिद्ध देहकी भावना करेंगे। उसी भावना-देहसे अष्टकालीय मानसी सेवाका चिन्तन[1] करते-करते स्वरूपसिद्धिके द्वारा उसमें अभिमान उत्पन्न होता है।

अपने सिद्ध देहकी भावना इस प्रकार करनी चाहिए—मैं श्रीमती राधिकाके यूथमें श्रीललिताजीके गणस्थित एक गोपकुमारी हूँ। जावट नामक गोपपल्लीमें मेरा निवास है। श्रीरूपमञ्जरीकी अनुगामिनी हूँ। चिदानन्दमयी चिन्तनीया रूपवती हूँ। कामरूपानुगामिनी रसमयी-उज्ज्वल गौर-वर्णकी नवयौवनसम्पन्ना और श्रीराधा-कृष्णकी समीपवर्तिनी अनुचरी हूँ। इस सिद्ध देहके साधनके लिए ग्यारह पर्व हैं—नाम, रूप, वयस, वेश, सम्बन्ध, यूथ, आज्ञा, सेवा, पराकाष्ठा, पाल्यदासीभाव और निवास। इन सबकी अपने स्वरूपमें भावना करते करते उसमें जैसा अभिमान पैदा होगा, उसी अभिमानके अनुरूप नित्यसेवाका स्फुटभाव उदित होगा। जड़ जगतमें स्थिति, भोजन, शयन आदि क्रियाएँ केवल अभ्यासवशतः मृत्यु पर्यन्त रहेंगी। स्थूल शरीरकी रक्षा, भरण-पोषण आदि क्रियाएँ साधनानुकूल क्रियाके रूपमें परिभावित होंगी। नीचे जिन

१. शृङ्गार रससर्वस्वः कृष्णः प्रियतमो मम। बिना राधा प्रसादेन कृष्ण प्राप्तिर्न जायते।
अतः राधिकाकृष्णौ स्मरणीयौ सुसंयुतौ। चाक्षुषेऽस्मिन् वसन् नित्यं सिद्धदेहेन साधकः॥
मनसा मानसी सेवामष्टकालोचितां व्रजे। प्रातराद्यष्टसमये सेवनन्तु क्रमेण च॥
नानोपकरणैः दिव्यैर्भक्ष्यभोज्यादिभिः सदा। चामर व्यजनार्थैश्च पादसंवाहनादिभिः॥
(भजनपद्धतौ ध्यानचन्द्रः)

कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्। तत्तत्कथारश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥
(भ०र० सिन्धौ श्रीरूपः)

श्लोकोंको[1] उद्धृत किया जा रहा है, उनके अर्थ अत्यन्त सरल हैं । उन्हें सभी समझ सकते हैं । जब साधकका रागानुग-मार्गमें लोभ उत्पन्न हो जाता है, तब वह सद्गुरुके श्रीचरणोंमें अपनी अवस्था बतला कर उस मार्गमें प्रवेश कैसे करूँ—यह निवेदन करता है। सद्गुरु साधककी रुचिकी परीक्षा करके उसको अधिकारोचित भजन-मार्ग बतलाकर साथ ही उसके सिद्ध देहका परिचय भी प्रदान करते हैं। उसी परिचयके अनुसार प्रात्यहिक साधक अर्थात् प्रेमारुरुक्षु व्यक्ति गुरुकुलमें निवास कर समस्त परिचय प्राप्त करेंगे तथा विशेष यत्नाग्रहके साथ स्वस्थानमें रहकर भजन करेंगे ।

---

१. अस्यैव सिद्धदेहस्य साधनानि यथाक्रमम् ।
एकादश प्रसिद्धानि वक्ष्यन्तेऽतिमनोहरम् ॥
नामरूपवयोवेशसम्बन्धो यूथ एव च ।
आज्ञा सेवा पराकाष्ठा पाल्यदासी निवासकः ॥

**नाम यथा—**

श्रीरूपमंजरीत्यादि नामाख्यानानुरूपतः ।
चिन्तनीयं यथायोग्यं स्वनाम व्रजसुभ्रुवाम् ॥

**रूपं यथा—**

रूपं यूथेश्वरीसेवायोग्यं भाव्यं प्रयत्नतः ।
त्रैलोक्यमोहनं कामोद्दीपकं गोपिकापतेः ॥

**वयो यथा—**

वयो नानाविधं तत्र यत्तु त्रिदशवत्सरम् ।
माधुर्याद्भुतकैशोरं विख्यातं व्रजसुभ्रुवाम् ॥

**वेशो यथा—**

वेशो नीलपट्टाद्यैश्च विचित्रालङ्कृतैस्तथा ।
स्व-स्व देहानुरूपेण स्वभावरससुन्दरम् ॥

**सम्बन्ध यथा—**

सेव्य-सेवक सम्बन्धः स्वमनोवृत्तिभेदतः ।
प्राणात्ययेऽपि नो हेयः कदा न परिवर्तनम् ॥

**यूथः यथा—**

यथा यूथेश्वरीयूथः सदा तिष्ठति तद्वशे ।
तथैव सर्वदा तिष्ठेद्भुत्वा तद्वशवर्त्तिनी ॥

**आज्ञा यथा—**

यूथेश्वर्याः शिरस्याज्ञामादाय हरिराधयोः ।
यथोदितश्च शुश्रूषां कुर्यादानन्दसंयुता ॥

**सेवा यथा—**

चामर व्यजनादीनां सयोग्यप्रतिपालनम् ।
इति सेवा परिज्ञेया यथामति विभागशः ॥

**पराकाष्ठा यथा—**

श्रीराधाकृष्णयोर्यद्वद्रूपमञ्जरीकादयः ।
प्राप्ता नित्यं सखीत्वञ्च तथास्यामिति भावयेत् ॥

**पाल्यदासी यथा—**

पाल्यदासी च सा प्रोक्ता परिपाल्यप्रियम्बदा ।
स्वमनोवृत्तिरूपेण या नित्यं परिचारिका ॥

**निवासः यथा—**

निवासो व्रजमध्ये तु राधाकृष्णस्थलीमतः ।
वशीवटस्तु श्रीनन्दीश्वरश्चाप्यतिकौतुकः ॥
मञ्जर्यो बहुशो रूपगुणशीलवयोऽन्विताः ।
नामरूपादि तत् सर्वं गुरुदत्तञ्च भावयेत् ॥
तत्र तत्र स्थितो नित्यं भजेत् श्रीराधिकापतिम् ।
नामस्मृति विकाशेन स्थित्वा कृष्णप्रियागृहे ॥
तदाज्ञा पालको भूत्वा कालेष्वष्टसु सेवते ।
सखीनां सङ्गिनीरूपामात्मानं भावनामयम् ॥

**—(भजनपद्धतौ ध्यानचन्द्रः)**

गुरुप्रदत्त अपने नामरूपादिका स्मरण करते-करते शीघ्र ही उसमें अभिमानयुक्त होंगे। यह अभिमान ही आत्मज्ञान है और इसे ही स्वरूपसिद्धि कहते हैं। पहले नामरूपगुण-लीला-स्मरण-कीर्त्तनके सम्बन्धमें जो भजनक्रम बतलाया गया है, उसीका यहाँ विस्तार किया गया है। अपने नामरूपादिकी चिन्ता करते हुए उसमें अपने सम्बन्धकी योजना करके श्रीराधाकृष्णकी नित्यसिद्ध नामरूपगुणलीला-में प्रवेश करना ही इस भजनका तात्पर्य है। भक्तिलता जब विरजाको पार कर ब्रह्मलोक को भेद करते हुए परव्योम या वैकुण्ठके ऊपरी प्रकोष्ठ गोलोक वृन्दावनमें स्थित कृष्ण-चरणकल्पवृक्षपर आरोहण करती हैं, तब उस लताका अवलम्बन कर साधकरूप माली भी अप्राकृत धामको प्राप्त करते हैं। इस स्वरूप-सिद्धिको किसी-किसी भक्त लेखकने साधक-का, साधन सम्पूर्ण होनेके पहले ही 'गोपगृहमें व्रजमें जन्मग्रहण करना' कहा है। वैसा कहना भी मिथ्या नहीं है। यही भक्तवैष्णवका वस्तुसिद्धिके पूर्व द्विजत्वलाभ है। भक्तको गोपीदेह-प्राप्ति ही सम्पूर्ण रूपसे द्विजत्वप्राप्ति या आपनदशा है। जब उस अवस्थामें गुणमय देहका पतन होता है, तभी साधकको स्वरूपसिद्धिसे वस्तुसिद्धि होती है। कृष्ण-नामरूपगुणलीला-स्मृतिके विकाससे ही नित्यवृन्दावनकी प्राप्ति होती है। भौमवृन्दावन और गोलोकवृन्दावनमें जो अत्यन्त सूक्ष्मभेद है,[1] श्रीसनातन गोस्वामीपादकृत 'बृहद्-भागवतामृत' ग्रन्थमें उसका विशद वर्णन उपलब्ध होता है।

चिद्धाम-वर्णनमें कहा गया है कि वहाँ रजोगुण एवं तमोगुण नहीं हैं और तन्मिश्र सत्वगुण भी नहीं है। वहाँ कालका प्रभाव नहीं है। मायाशक्तिकी भी वहाँ अवस्थिति नहीं है।[2] कृष्ण और कृष्णपार्षद वहाँ नित्य-वास करते हैं। यह कैसे संभव हुआ? हम देखते हैं कि कृष्णधाम ब्रह्मधामके ऊपरी भागमें स्थित होकर भी नित्य अष्टकालादि लीलापीठके रूपमें भी विद्यमान हैं। भेद और देश-काल—ये सभी वहाँ वर्त्तमान हैं। क्या ही आश्चर्यकी बात है! वेदपुराणोंमें जो कुछ भी वर्णन किया गया है, उसे देखनेसे पता चलता है कि जो जो वैचित्र्य या वस्तुएँ इस मर्त्य जगतमें पायी जाती हैं, वे सभी वैकुण्ठमें हेयगुणवर्जित होकर नित्य वर्त्तमान हैं। मूल बात यही है कि यह जगत चिज्जगतका प्रतिफलित तत्व है। यहाँ माया द्वारा उक्त सभी वस्तुएँ कलुषित हैं। चिज्जगतमें माया और उसके त्रिगुण नहीं हैं। अतएव सभी निर्दोष और शुद्धसत्वमय हैं। काल और देश भी वैसे ही हैं।

१. यथा क्रीड़ति तद्भूमौ गोलोकेऽपि तथैव सः। अध उर्द्ध्वतया भेदोऽनयोः कल्प्यते केवलम्॥
(बृहद्भागवतामृत)

२. प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वञ्च मिश्रं न च कालविक्रमः।
न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥
(भा० २।९।१०)

कृष्णलीला मायातीत—त्रिगुणातीत है। अतएव निर्गुण है। उस लीलाकी रसपुष्टिके लिए निर्दोष काल, निर्दोष देश और निर्दोष आकाश-जलादि—सभी कृष्णलीलाके उपकरण हैं। इसलिए उस चिन्मयकालमें (जिसमें जड़ीय कालका प्रभाव नहीं है) कृष्णलीला अष्टकालीय है। निशान्तकाल, प्रातःकाल, पूर्वाह्णकाल, मध्याह्नकाल, अपराह्णकाल, सायंकाल, प्रदोषकाल और रात्रिकाल—इस प्रकारके अष्टकालमें दिन-रात विभक्त होकर कृष्णलीलाके नित्य अखण्ड रसकी पुष्टि करते हैं।[1]

जो लीला गोकुलवृन्दावनमें जिसप्रकार नित्यरूपसे कृष्णेच्छासे उदित हुई है, उसीके अनुरूप लीला गोलोकवृन्दावनमें नित्य वर्त्तमान है। पद्मपुराणमें ऐसा उल्लेख है कि नारदगोस्वामीने अपने गुरुदेव श्रीसदाशिवसे पूछा था—"प्रभो ! मैंने जो कुछ पूछा, सभी मैंने सुना। इस समय सर्वोत्तम भावमार्ग जाननेके लिए इच्छुक हूँ।" महादेवजीने कहा—"हे नारद ! कृष्णके[2] सभी दास, सभी सखा, पितामाता, प्रेयसीवृन्द निज-तुल्य गुणशाली होकर सभी नित्य हैं। पुराणोंमें जिन लीलाओंका वर्णन है, वे भौमवृन्दावनमें नित्य रूपसे कालचक्रमें वर्त्तमान हैं। वनगोष्ठमें गमनागमन, सखाओंके साथ गोचारण—सभी एक ही समान हैं। भौमजगतमें जो असुर-नाशादि कार्य है, वह केवल अभिमान रूपसे रसपुष्टिके लिए अप्रकट-लीलामें वर्त्तमान है। वह अभिभाव-ही असुरघातन-क्रिया रूपसे प्रकटलीलामें देखा जाता है। उनकी प्रेयसियाँ प्रच्छन्नरूपसे पारकीय अभिमानके साथ अपने प्रियतम कृष्णको सुख प्रदान करती हैं। जो व्यक्ति उनके अनुगत होकर कृष्णसेवा करेंगे, वे अपनेको तदनुरूप रूपगुणशाली भावना करेंगे। सरल, उद्धृत श्लोकोंका पाठ कर उनका तात्पर्य ग्रहण करेंगे।

---

१. एवं पद्मोपरि ध्यात्वा राधाकृष्णौ ततस्तयोः। अष्टकालोचितां सेवां विदध्यात् सिद्धदेहतः॥
निशान्तः प्रातः पूर्वाह्णो मध्याह्नश्चापराह्णकः। सायं प्रदोषरात्रिश्च कालाष्टौ च यथाक्रमम्॥
मध्याह्नयामिनी चोभौ यन्मुहूर्त्तमितौ स्मृतौ। त्रिमुहूर्त्तमितो ज्ञेया निशान्तप्रमुखापरे॥

२. दासाः सखायः पितरः प्रेयस्यश्च हरेरिह। सर्वे नित्या मुनिश्रेष्ठ तत्तुल्यगुणशालिनः॥
यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्त्तिताः। तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि॥
गमनागमने नित्यं करोति वनगोष्ठयोः। गोचारणवयस्यैश्च बिनासुरविघातनम्॥
पारकीयाभिमानिन्यस्तथा तस्य प्रियजनाः। प्रच्छन्नेनैव भावेन रमयन्ति निजप्रियम्॥
आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्। रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥
नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम्। प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराङ्मुखीम्॥
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवापरायणाम्। कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवसं यत्नात्तयोः सङ्गमकारिणीम्। तत्सेवनसुखाह्लाद-भावेनातिसुनिर्वृताम्॥
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवनं समाचरेत्। ब्राह्मं मुहूर्त्तमारभ्य यावत् स्यात्तु महानिशा॥
(पद्मपुराण)

नारदजीने[1] कहा—"जिन्होंने अप्रकट लीला-का अनुभव नहीं किया, वे किस प्रकार उस भावसे हरिसेवा करेंगे ?" सदाशिवने कहा—"हे नारद ! मैं तत्त्वतः उस लीलाको नहीं जानता। मेरा पुरुषत्व-भाव ही इसका बाधक है। वृन्दादेवीजीके निकट जानेपर वे इस लीलाका वर्णन करेंगी। वृन्दादेवी गोविन्द-परिचारिका सखियोंके साथ केशीतीर्थके निकट विराजमान हैं।" नारदजीने उनके निकट जाकर पूछा—"हे देवि ! मैं यदि इसके योग्य होऊँ, तो आप मुझे कृष्णका नैत्यिक चरित्र[2] बतलानेकी कृपा करें।" वृन्दादेवीजी-ने नारदजीको कृष्णका परम गोपनीय दैनन्दिन चरित्र सविस्तार बतलाया था। जिस रूप और जिस भावसे प्रात्यहिक साधक भावना करेंगे, उसीके विषयमें महादेवजीने इस उपदेशमें बतलाया है।

---

नारद उवाच

१. हरेर्दैनन्दिनीं लीलां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वः। लीलामजानता सेव्यो मनसा तु कथं हरिः॥

श्रीसदाशिव उवाच

नाहं जानामि तां लीलां हरेर्नारद तत्त्वतः। वृन्दादेवीमिदो गच्छ सा ते लीलां प्रवक्ष्यति॥
अविदूर इतः स्थानात् केशीतीर्थसमीपतः। सखीसङ्घवृता सास्ते गोविन्दपरिचारिका॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य हृष्टो नत्वा पुनः पुनः। वृन्दाश्रमं जगामाथ नारदो मुनिसत्तमः॥

नारद उवाच

२. त्वत्तो वेदितुमिच्छामि नैत्यिकं चरितं हरेः। तदादितो मम ब्रूहि यदि योग्योऽस्मि शोभने॥

—★—

## श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी गत २७ भाद्र, १३ सितम्बर, रविवारके दिन जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव समितिके मूल-मठ और शाखा मठों श्रीहरिकीर्त्तनके माध्यम से समारोहपूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें प्रातःकाल मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरु-वन्दना गुरु-परम्परा, पंच-तत्व कीर्त्तन आदिके पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित पदावलियों-का कीर्तन हुआ। तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने उक्त महापुरुषके जीवन-चरित्र और शिक्षाओं पर सारगर्भित प्रवचन दिया। शामको सन्ध्या आरतिके पश्चात् महाजन पदावली-कीर्त्तन हुआ। तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् उर्द्ध-मन्थी महाराज, श्रीसुबलसख ब्रह्मचारी श्रीकुंजबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रील भक्ति विनोद ठाकुरके अतिमर्त्य शिक्षा एवं जीवनीकी विविध पहलुओंपर प्रकाश डाला। अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारा-यण महाराजने श्रील ठाकुर महाशयके जीवन-चरित्र एवं अप्राकृत शिक्षाओंपर भावपूर्ण, हृदय-ग्राही एवं शास्त्र-सुसिद्धान्तपूर्ण प्रवचन दिया। सभाके अन्तमें हरिकीर्त्तनके पश्चात् सभाके कार्यक्रम की इतिश्री की गई।

—जनैक संवाददाता

# भगवन्नामके परम गायक महाभागवतवर नारदजी

श्रीकृष्ण-लीला रस-माधुरीके परम रसिक, भगवन्नामके परम गायक, भगवद्भक्तिके सबल प्रचारक, आर्तत्राणपरायण, जगदुद्धारक नित्यसिद्ध भगवत्पार्षद महाभागवत देवर्षि नारदके पावन चरित्र पाप समुद्रके विनाशक हैं। निखिल लोक आपके पादपद्मोंकी पुनीत रजसे पवित्र होते रहते हैं। देव-दानव, राजा-रंक, दीन-हीन व्याध, नीच-उच्चकोटि के जीवों तककी दुःखराशि, विपत्ति, त्रयताप, पाप आदिकी निवृत्तिके लिए आप अहर्निश स्नेहमयी अनुकम्पासे द्रवित हो सुमधुर हरिनामका कीर्त्तन करते महती वीणाके तारोंकी झंकारसे सभी दिशाओंको पूरित करते हुए विचरण करते रहते हैं। उन जीवोंका उद्धार करके ही विश्राम ग्रहण करते हैं। भगवन्नाम प्रचारकोंमें आप अग्रणी हैं। सन्तोंपासकोंमें आपका स्थान सर्वोपरि है। भक्तिसाधकोंमें आप मूर्धन्य हैं।

जन-उद्धारकारिणी आपकी असंख्य पुनीत गाथाएँ युग-युगोंसे लोक-परलोकके कलेवरमें प्राणोंकी भांति सन्निविष्ट है। परिभ्रमण करते समय आप जिसे आर्त या भगवत्-प्राप्तिके योग्य पात्र देखते हैं, वहां उसे दया-परवश होकर हरिनाम-सुधा पिलाकर उन्मत्त बना देते हैं। उसका आमूल-चूल परिवर्त्तन कर उसे भक्तिके उन्नततम शिखर पर पहुँचा देते हैं। इसी कारणसे केवल भूत-भविष्यत् ही नहीं, वर्त्तमान युग भी आपकी कथा और नामको नहीं भूला है।

आपके अलौकिक अनुपम जीवन-चरित्र वर्णन करनेके पहले आपके परोपकारी अनुपम क्रिया कलापोंका वर्णन आवश्यक है। यह उत्कर्षकी वृद्धि करने एवं पाठकोंको भक्ति-सरितामें अवगाहन करानेमें सफल सिद्ध होगा।

बहुत पहलेकी बात है कि एकबार देवर्षि नारदजी विचरण करते करते जनशून्य जंगलमें पहुँचे। वहाँ आपके मनोहर, प्रभावोत्पादक शरीरका दर्शन कर अज्ञानी एवं हिंसक जनैक रत्नाकर नामक दस्युने अपनी स्वार्थ सिद्धिकी आशासे उन्हें पकड़ लिया एवं अविश्वासके कारण पेड़से बाँध दिया। नारदजीने उसे घर जाकर यह पूछ आनेके लिए कहा कि उसके पाप कर्मों का फल कोई ग्रहण करेंगे या नहीं। उनके कहने पर वह अपना घर पहुँचा। घरका कोई भी सदस्य उसके पापका भाग ग्रहण करनेके लिए राजी नहीं हुआ। वह निराश होकर घरसे लौटा। वह चिन्तातुर हो गया क्योंकि हिंसाके सभी दोषोंका भागी साबित हो चुका था। नारदजीने उसे सदुपदेश दिया। नारदजीके वचन उसके समझमें आ गये। उनका उपदेश शिरोधार्य कर उनके आदेशसे वह राम-नाम जप करने लगा। पर पापोंकी प्रबलताके कारण रामनामका ठीक उच्चारण नहीं कर सका। नारदजीने दयार्द्र होकर रामके उलटे नाम 'मरा' जपमें प्रवृत्त किया। उसी जपके प्रभावसे वही व्याध परम तपस्वी वाल्मीकि ऋषि बन गया। जब वाल्मीकि ऋषि ब्रह्मा-जीके आदेशसे रामायणकी रचनामें प्रवृत्त हुए, तो उस समय वहाँ नारदजी उपस्थित हुए। उस समय वाल्मीकिजी तप-स्वाध्यायमें निरत, तपस्वी श्रेष्ठ, भगवत्तत्त्वके उत्तम वक्ता, मुनिपुङ्गव नारदजीसे पूछा था—

**को न्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।**
**धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥**

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ।
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवविधं नरम् ॥

(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, १।२-५)

इसके उत्तरस्वरूप सर्व हितैषी श्रीनारदने परात्पर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामके पावन चरित्रका गान किया । वाल्मीकिजीने उसी आधारपर जगतकी अमूल्य निधि रामायणकी रचना की । यह रामायण भक्तों का सर्वस्व है और जागतिक नीति और पारमार्थिक शिक्षासे परिपूर्ण है । सत्यवतानन्दन व्यासदेवने भी आपके प्रसादसे ही भागवत शास्त्रकी रचना की थी । इन दोनों ग्रन्थ-रत्नोंने असंख्य जीवोंका अब तक उद्धार किया है ।

देव-दानव, राजा-रंक, ऊँच-नीच, सभी प्रकारके प्राणी—देवर्षि नारदजीके अहैतुक अनुग्रहके पात्र हैं । आपने अनेक पथभ्रष्टोंको परमार्थका पथिक बना कर भक्तिका अमोघ रसायन प्रदान कर भव रोगका शमन किया है । गणेशजी, जो गणराज हैं, वे आपके कहने पर रामनामकी परिक्रमा कर देवताओंके प्रथम पूजाके अधिकारी हुए । शिव-पार्वती मिलनमें भी आपका योग है ।

अपनी सौतेली माताके कठोर वचनसे विद्ध पञ्चवर्षीय बालक ध्रुवको आपने उसकी अटलतासे प्रसन्न होकर भगवत्प्राप्तिका साधन बतलाकर भगवानका परम भक्त बना दिया था । गृहासक्त चित्रकेतुको परम विद्या प्रदान कर आपने कृतार्थ कर दिया । प्रह्लादकी माता कयाधुकी रक्षा कर उसे आश्रममें रखा था और गर्भस्थ बालक प्रह्लाद आपकी अहैतुकी कृपा और शिक्षासे महाभागवताग्रणी हुआ था । युधिष्ठिरको आपने प्रह्लाद-नृसिंहदेवका चरित्र सुनाकर सदाचार, भागवत-धर्म, आश्रम-धर्मका आदिका उपदेश दिया है । रामायण, भागवत, अन्यान्य पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें स्थान-स्थान पर आपका वृत्तान्त वर्णन किया गया है । आपके उपदेशोंसे प्राचीन कालका शास्त्रीय और दार्शनिक वाङ्मय प्रकाशित है ।

भक्तिदेवीके वृन्दावन धाममें आकर युवा और ज्ञान-वैराग्यके वृद्ध होनेका कारण नारदजीने बतलाया और हरिकीर्त्तनका कलियुगमें सर्वश्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया—

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्त्तनात् ॥

(भागवत माहात्म्य १।६८)

अर्थात् जो फल तपस्या, योग, समाधि आदिसे नहीं मिलता, कलियुगमें वही फल श्रीहरिकीर्त्तनसे भली भाँति मिल जाता है । नारदजीने यह भी कहा कि तीर्थोंमें नाना-प्रकारके अत्यन्त घोर कर्म करनेवाले नास्तिक नारकी पुरुष रहते हैं जिससे तीर्थोंका प्रभाव घटता जा रहा है एवं कुकर्माचरणसे सभी वस्तुओंका सार नहीं रहा । जिनका चित्त निरन्तर काम-क्रोध-लोभ-तृष्णासे मदमत्त है, वे भी तपस्याका ढोंग करनेके कारण तपका भी सार निकल गया । मन पर काबू न पाने से एवं दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण, साथ ही साथ शास्त्राभ्यासके अभावसे ध्यानयोगका फल नहीं रहा । सम्प्रदायानुसार प्राप्त वैष्णवता भी बहुत कम देखनेमें आती

है। जब भक्तिदेवीसे नारदजीने ये सभी बातें कहीं, तब वे प्रसन्न होकर ऐसा कहने लगीं—

**सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ।**
**साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥**

( भागवत् माहात्म्य १।७९ )

हे देवर्षे ! आप धन्य हैं। मेरे सौभाग्यसे आपका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। संसारमें साधुओं का दर्शन ही समस्त शुभ सिद्धियोंका परम कारण है। भक्तिदेवीने नारदजीकी प्रचुर प्रशंसा की और वन्दना भी की—

**जयति जयति मायां यस्य कायाधवस्ते**
**वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।**
**ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं**
**सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतोऽस्मि ॥**

( भागवत माहात्म्य १।८० )

आपके एक समयके उपदेश ग्रहण कर कयाधुपुत्र प्रह्लादने माया पर विजय प्राप्त कर लिया। ध्रुवने आपकी कृपासे ही ध्रुवपद प्राप्त किया। आप सर्व मंगल स्वरूप और ब्रह्माजीके पुत्र हैं। ऐसे आपको मैं नमस्कार करती हूँ।

भक्तिदेवीको नारदजीने आश्वासन दिया और भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करनेके लिए कहा, जिससे उनकी चिन्ता दूर हो। उन्होंने बतलाया—

**द्रोपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।**
**पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥**

( भागवत माहात्म्य २।२ )

जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रोपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं। कलियुगमें उपेक्षाके कारण तुम्हारे दोनों पुत्र ज्ञान एवं वैराग्य मन्द एवं वृद्ध हो गये हैं। फिर भी चिन्ताकी बात नहीं है। कलियुगके समान और कोई युग नहीं है। इसमें केवल भक्ति ही सब कुछ देने वाली है। तुम भगवान् के लिए प्राणोंसे भी अत्यन्त प्यारी हो।

नारदजीने यह संकल्प किया कि भक्तिदेवीका दुःख वे अवश्य दूर करेंगे और सर्वत्र भक्तिकी स्थापना करेंगे। ऐसा सोचकर जब वे भ्रमण करने लगे, उन्हें सनकादि ऋषियोंके दर्शन प्राप्त हुए। सनकादियोंने नारदजीकी विकलता का कारण पूछा एवं कहा—

**अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।**
**सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योग भास्करः ॥**
**त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्त्मनि ।**
**घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥**

(भागवत माहात्म्य २।५४–५५)

नारद आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके शिरोमणि हैं। श्रीकृष्णदासोंके शाश्वत पथ-प्रदर्शक एवं भक्तियोगके भास्कर हैं। आप भक्तिके लिए जो उद्योग कर रहे हैं, वह आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं। भगवान्‌के भक्तके लिए तो भक्तिकी सम्यक् स्थापना करना सदा-सर्वदा ही उचित है।

हे नारद ! सुख साध्य उपाय पहले से ही निश्चित है। आप श्रीमद्भागवत शास्त्रका प्रवचन करें जिससे ज्ञान वैराग्य तरुण हो जायेंगे और भक्तिको सुख मिलेगा। ऐसा उपदेश प्राप्त होकर उन्होंने श्रीमद्भागवत-सप्ताह करवाया जिससे भक्तोंको और भक्ति-देवीको अपार सुख प्राप्त हुआ और सभीके दुःख दूर हो गये।

नित्यनिद्ध भगवत्पार्षद नारदजी सर्वप्रथम ब्रह्माजीके मानस-पुत्रके रूपमें प्रकटित हुए। वे जन्मसे ही परम

विरक्त, कृष्णके परम भक्त और सर्वगुणोंके भण्डार स्वरूप थे। ब्रह्माजीने एकबार अपने आजन्म विषय-विरक्त, एकान्त कृष्णभक्ति परायण पुत्र नारदजीको अपने अन्यान्य भाइयोंके साथ मिलकर प्रजा-सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। अपने पिताके इस आदेशसे अत्यन्त दुःखित होकर नारदजीने कहा—"हे पिता! आप तो सर्वदा हरिभजन कर रहे हैं। मुझे, जो कि आपका पुत्र हूँ, विषय-विषमें डुबाना चाहते हैं? यह क्या आपके लिए न्यायसंगत है? आप मुझे अमृतसे वञ्चित कर विष क्यों पिलाना चाहते हैं? विषय-तृष्णा या विष एकबार संचारित होने पर जन्म-जन्मांतरों तक भी उसका जलन नहीं मिटता, उससे जीव अपनी रक्षा नहीं कर सकते। भक्तिप्रिय, भक्तवत्सल, भक्ताराध्य भक्तोंके पालक परम परमेश्वर कृष्णको त्यागकर कौन बुद्धिमान पुरुष विषय-सागरमें डूबना चाहेगा? अतएव आप मुझे क्षमा करें। मैं हरिभजन नहीं परित्याग कर सकता।"

ब्रह्माजीने अपने पुत्रकी ऐसी दृढ़ता देखकर उनको हरिभक्तिमें दृढ़ रूपसे प्रतिष्ठित करनेके लिए एवं जगतमें हरिभक्तकी महिमा घोषणा करनेके लिए शाप दिया—"तुम गन्धर्व योनिमें जन्म कर पचास कामिनियोंके पति बनोगे। उसके पश्चात् शूद्रा स्त्रीके गर्भ से जन्म ग्रहण करोगे। उसके पश्चात् वैष्णवों की कृपासे कृष्ण भक्ति पाकर पुनः मेरा पुत्रत्व प्राप्त करोगे।"

नारदजी अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने कहा—"आपने मुझे ऐसा कठोर शाप क्यों दिया? मैं निरपराध हूँ। फिर भी मैं आपके शापको ग्रहण करता हूँ। आपसे केवल मेरी यही प्रार्थना है कि जिस योनिमें भी मेरा जन्म क्यों न हो, मेरी भगवान् हरिके चरणों में निश्चला भक्ति रहे। जो गुरु, पिता, माता, भाई, बन्धु या पति अपने आश्रित व्यक्तिको कृष्ण पादपद्मोंमें भक्ति नहीं देते और उन्हें अभयपथ न दिखाकर ध्वंस-पथमें ढकेल देते हैं, वे स्वयं नरकगामी होते हैं। अतएव आपने यह बड़ा अन्याय किया। अतएव तीन कल्पों तक कोई आपकी पूजा नहीं करेगा।" ऐसा कहकर नारदजी शीघ्र ही अपने स्थानसे च्युत होकर गन्धर्वराज उपबर्हणके रूपमें प्रकट हुए।

(क्रमशः)

# ग्रंथालोचन

"प्राचीन भारतमें गो-मांस— एक समीक्षा"—

प्रकाशक— मोतीलाल जालान, गीताप्रेस. गोरखपुर।

पृष्ठ संख्या २४० (डिमाई आठ पेजी), सजिल्द मूल्य २)

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय वाङ्मयके पूर्वीय एवं पाश्चात्य प्रौढ़ विद्वानों द्वारा समय-समय पर लिखित विचारों, एवं लेखोंका सुन्दर संकलन है। वैदिक कालमें गोमांस की तो बात ही क्या, साधारण मांसाहार भी निषिद्ध था। किन्तु पाश्चात्य तथाकथित विद्वानोंने भारतीयोंकी भारतीय संस्कृतिके प्रति अनास्था एवं घृणा उत्पन्न करा कर सम्पूर्ण भारतको

ईसाई धर्ममें दीक्षित कर उन्हें सदाके लिए दासताके सुदृढ़ शिकंजोंमें कसनेके लिए अतिशय घृणित कुचक्र रचा। उन्होंने भारतीय संस्कृतिके रीढ़ स्वरूप वेदों एवं उपनिषदों आदि धर्म ग्रन्थोंके कतिपय स्थलोंका काल्पनिक एवं विरुद्ध अर्थ लिखा। इसके लिए अर्थ और पदका प्रलोभन देकर कतिपय भारतीय जयचन्दोंके द्वारा भी वेदों और उपनिषदोंका विपरीत अर्थ प्रचार करवा कर वैदिक काल में गो-मांस भक्षणकी अनिवार्य प्रथाकी विद्यमानता दिखलाकर सद्-शास्त्रोंका कुप्रचार करवाया। अँग्रेजोंके चले जानेपर आज भी काली चमड़ी वाले अँग्रेजों द्वारा, वर्तमान नास्तिक सरकारके संस्कृतानभिज्ञ वरिष्ठ मंत्रियों एवं उच्चपदस्थ कर्मचारियोंके द्वारा पूर्वोक्त काल्पनिक एवं विपरीत अर्थोंके द्वारा साधारण-जनताको गुमराह किया जाता है। इस ग्रन्थमें उक्त स्थलोंका यथार्थ एवं सप्रमाणिक अर्थ प्रकाशित कर उपरोक्त षड़यन्त्रका भण्डफोड़ किया गया है। इस ग्रन्थका अध्ययन करनेसे पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रंगे व्यक्तियोंका तथा साधारण जनताका भ्रम अवश्य ही दूर होगा—हमारा ऐसा विश्वास है।

आशा है प्रत्येक विशुद्ध भारतीय इस परम आवश्यकीय ग्रंथका अवश्य ही संग्रह करेगा और यथार्थ सत्यकी उपलब्धि करेगा।

—सम्पादक

---

# गोरक्षा-महाभियान

गत अक्षय-तृतीयासे आरम्भ हुआ सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान पाँच महीनेसे निरन्तर चल रहा है। भारतके सभी प्रान्तों से गोभक्तोंके समह सत्याग्रह करते हुए निरन्तर कारागार वरण कर रहे हैं। न्यायालयसे सजाएँ भी दी जा रही हैं। किन्तु गोभक्तोंका उत्साह क्रमशः बढ़ता जा रहा है। अधिक से अधिक संख्याओंमें सत्याग्रही गिरफ्तारी देनेको उतावले हो रहे हैं।

पूर्व निश्चयके अनुसार जयपुरमें १८, १९, २० सितम्बरको पुरीके श्रीशंकराचार्यके सभापतित्वमें गोरक्षा-सम्मेलन हुआ, जिसमें सर्व सम्मतिसे गोरक्षा सत्याग्रहको और भी तेज करनेका संकल्प किया गया है। बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि केन्द्रीय सरकारमें स्थित कतिपय वरिष्ठ मंत्री एवं उच्च-पदस्थ कर्मचारी अज्ञतावशतः यथार्थ तत्वोंको तोड़-मरोड़कर अपने भ्रष्ट वक्तव्योंसे भोली-भाली जनताको गुमराह करनेकी चेष्टा करते हैं। गोजातिकी रक्षाके बिना भारतकी स्वतंत्रता एवं संस्कृतिकी कदापि रक्षा नहीं हो सकती। अतः जनतासे अनुरोध करते हैं पहलेसे भी अधिकतर सुसंगठित और सुदृढ़ रूपमें ऐसी आवाज बुलन्द करें जिससे वर्तमान सरकार गोहत्या बन्द करनेके लिए बाध्य हो सकें।

—सम्पादक

★